IJMRSETM

e-ISSN: 2395 - 7639

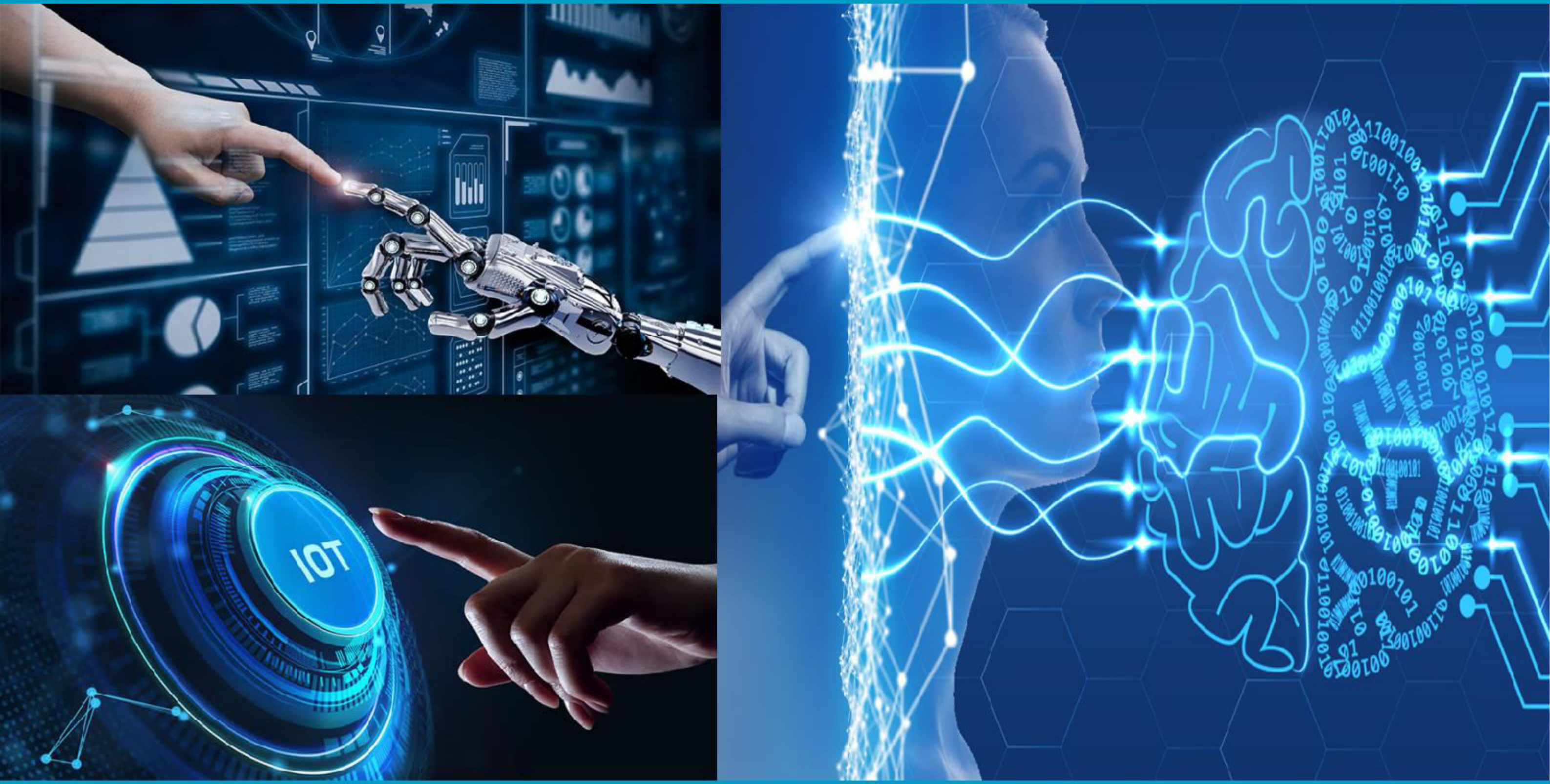

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH

IN SCIENCE, ENGINEERING, TECHNOLOGY AND MANAGEMENT

Volume 10, Issue 8, August 2023

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 7.580

+91 99405 72462 +9163819 07438 ijmrsetm@gmail.com www.ijmrsetm.com

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 10, Issue 8, August 2023 |

रैयतवाड़ी व्यवस्था

Ram Phool Meena

Tagore Mahavidhyalaya, History, Aklera, Jhalawar, Rajasthan, India

सार

रैयतवाड़ी व्यवस्था 1792 ई. में मद्रास प्रैज़िडन्सी के बारामहल जिले में सर्वप्रथम लागू की गई। थॉमस मुनरो 1819 ई. से 1826 ई. के बीच मद्रास का गवर्नर रहा। रैयतवाड़ी व्यवस्था के प्रारंभिक प्रयोग के बाद मुनरो ने इसे 1820 ई. में संपूर्ण मद्रास में लागू कर दिया। इसके तहत कम्पनी तथा रैयतों (किसानों) के बीच सीधा समझौता या सम्बन्ध था। राजस्व के निधार्रण तथा लगान वसूली में किसी जमींदार या बिचौलिये की भूमिका नहीं होती थी। कैप्टन रीड तथा थॉमस मुनरो द्वारा प्रत्येक पंजीकृत किसान को भूमि का स्वामी माना गया। वह राजस्व सीधे कंपनी को देगा और उसे अपनी भूमि के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता था लेकिन कर न देने की स्थिति में उसे भूमि से वंचित होना पड़ता था। इस व्यवस्था के सैद्धान्तिक पक्ष के तहत खेत की उपज का अनुमान कर उसका आधा राजस्व के रूप में जमा करना पड़ता था।

परिचय

रैयतवाड़ी दो शब्दों के मेल से बना है जिसमें रैयत का आशय प्रजा या किसान से है एवं वाड़ी का आशय है प्रबंधन, अर्थात किसानों के साथ प्रबंधन। दूसरे शब्दों में रैयतवाड़ी व्यवस्था ब्रिटिश कंपनी द्वारा प्रचलित एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें राज्य या सरकार किसानों के साथ प्रत्यक्ष तौर पर भू राजस्व का प्रबंधन करती है। यह मद्रास, बंबई, आसाम, एवं सिंध का क्षेत्र में यह व्यवस्था प्रचलित थी अर्थात भारत में ब्रिटिश सम्राज्य के कुल भूभाग के 51% भूमि पर यह व्यवस्था लागू थी। रैयतवाड़ी व्यवस्था के प्रचलन के संदर्भ में मूल रूप से दो विचारधाराएं प्रस्तुत की जाती है पूंजीवादी विचारधारा और उपयोगितावादी विचारधारा स्मरणीय है,[1] कि रैयतवाड़ी व्यवस्था के पीछे सबसे अधिक पूंजीवादी विचारधारा तथा पूंजीवादी विचारधारा का मानवीय चेहरा उपयोगितावादी विचारधारा मुख्य तौर पर जिम्मेदार था। इस विचारधारा का केंद्रीय मान्यता था की भूमि के ऊपर उस वर्ग का स्वामित्व होना चाहिए। जो उस भूमि में अपना श्रम लगाकर फसलों का उत्पादन करता है और यही वजह है,की अर्थशास्त्री रिकार्डो के सिद्धांत से प्रभावित होकर जमींदारों को गैर उत्पादक वर्ग मानते हुए किसानों को ही भूमि का मालिक स्वीकार किया गया| इस पद्धति के तहत किसानों के साथ भू राजस्व कर निर्धारण भी रिकार्डो के सिद्धांत पर ही आधारित था जैसे:-

कुल उत्पादन - किसान का कुल लागत = शेष और उस शेष पर राज्य एवं किसानों के बीच फसल से प्राप्त आय का बंटवारा

रैयतवाड़ी पद्धति में भूमि का मालिकाना हक किसानों के पास था। भूमि को क्रय विक्रय एवं गिरवी रखने की वस्तु बना दी गई। इस पद्धति में भू राजस्व का दर वैसे तो 1/3 होता था, लेकिन उसकी वास्तविक वसूली ज्यादा थी। इस पद्धति में भू-राजस्व का निर्धारण भूमि के उपज पर न करके भूमि पर किया जाता था इस पद्धति में भी सूर्यास्त का सिद्धांत प्रचलित था।[2]

1. भू राजस्व का निर्धारण भूमि के उत्पादकता पर न करके भूमि पर किया गया, जो किसान के हित के लिए सही नहीं था।

2. इस पद्धति में भू राजस्व का दर इतना ज्यादा था कि किसान के पास अधिशेष नहीं बचता था। परिणाम स्वरुप किसान महाजनों के चंगुल में फसते गए और इस तरह महाजन ही एक छद्म ज़मीदार के रुप में उभर कर आने लगे।

3. इस व्यवस्था ने दोषपूर्ण राजस्व व्यवस्था के कारण किसानों के पास इतना अधिशेष नहीं बचता था, कि वह कृषि में उत्पादकता बढ़ाने के लिए निवेश कर सके, परिणामस्वरूप किसान धीरे-धीरे कर्ज़ और लगान के कुचक्र में फंसते चले गए|

4. यद्यपि इस व्यवस्था में फसलों के वाणिज्यिकरण को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, लेकिन इसका भी लाभ किसानों को प्राप्त नहीं हो पाया, यह लाभ सौदागर सरकार एवं महाजन को मिला।

कुल मिलाकर रैयतवाड़ी व्यवस्था स्थाई बंदोबस्त के सापेक्ष निसंदेह एक प्रगतिशील कदम था, लेकिन विद्यमान ढांचा साम्राज्यवादी था, जिसका केंद्रीय उद्देश्य था,'भारतीय अर्थव्यवस्था का शोषण करना' था।

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 10, Issue 8, August 2023 |

विचार-विमर्श

महालवाड़ी दो शब्दों से मिलकर बना हुआ है, जिसमें महाल का अर्थ है, गांव मोहल्ला कस्बा इत्यादि और वाड़ी का आशय है प्रबंधन, अर्थात महलवाड़ी भू राजस्व के पद्धति में एक गांव को ही इकाई मानते हुए, उसके साथ भू-राजस्व का बंदोबस्त कर दिया गया। इस पद्धति के तहत उस गांव को सामूहिक रुप में अर्थात अपना प्रधान के माध्यम से सरकार को अपना उपज का अंश देना पड़ता था |[3]

उत्तर प्रदेश मध्य भारत पंजाब इत्यादि के क्षेत्र में यानी कि भारत में ब्रिटिश कंपनी के कुल भूभाग के 30% भाग जमीन पर इस व्यवस्था पर यह लागू किया गया। उन्नीसवीं सदी के दूसरे दशक से इस प्रक्रिया की आरंभ हुई जो कालांतर में पंजाब के क्षेत्र के विजय के बाद वहां भी इसे लागू कर दिया गया। इसे हॉल्ट मैकेंजी , रॉबर्ट बर्ड, जेम्स टॉम सॉन्ग द्वारा लागू किया गया। महालवाड़ी व्यवस्था के संदर्भ में भी उपयोगितावादी विचारधारा के प्रभाव को स्वीकार किया जाता है और इसलिए इस व्यवस्था में भी किसानों के स्वामित्व के साथ छेड़छाड़ नहीं किया, और साथ ही साथ इस व्यवस्था में सिंचाई संसाधनों के विकास पर बल दिया गया |

विशेषताएं

1. यह व्यवस्था एक गांव को इकाई मानकर उसके साथ राज्य द्वारा भू राजस्व का प्रबंधन करने के विचार पर आधारित थी। ये व्यवस्था हमारे देश के किसानों के लिए घातक सिद्ध हो रही थी। 2. इस व्यवस्था में मध्यस्थ वर्ग का अभाव था, यह व्यवस्था स्थाई न होकर 20 से 30 वर्षों के लिए हुआ करती थी,(अल्पकालिक थी), पुनः इसका निर्धारण होता था इस पद्धति में भी राजस्व की दर अधिकतम थी कभी-कभी यह दर 66% तक हो जाती थी।

उल्लेखनीय है, कि महालवाड़ी व्यवस्था में कृषि के क्षेत्र में कुछ सुधार हुए जैसे सिंचाई योजनाओं की शुरूआत, लेकिन सरकार के साम्राज्यवादी स्वरूप होने के कारण इस व्यवस्था के माध्यम से भी किसानों के जीवन में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं हुआ

1772 में वारेन हेस्टिंग्स ने एक नयी भू-राजस्व पद्धति लागू की, जिसे 'इजारेदारी प्रथा' के नाम से जाना गया है। इस पद्धति को अपनाने का मुख्य उद्देश्य अधिक भू-राजस्व वसूल करना था। इस व्यवस्था की मुख्य दो विशेषतायें थीं-

इसमें पंचवर्षीय ठेके की व्यवस्था थी। तथासबसे अधिक बोली लगाने वाले को भूमि ठेके पर दी जाती थी।[5]

किंतु इस व्यवस्था से कम्पनी को ज्यादा लाभ नहीं हुआ क्योंकि इस व्यवस्था से उसकी वसूली में अस्थिरता आ गयी। पंचवर्षीय ठेके के इस दोष के कारण 1777 ई. में इसे परिवर्तित कर दिया गया तथा ठेके की अवधि एक वर्ष कर दी गयी। अर्थात अब भू-राजस्व की वसूली का ठेका प्रति वर्ष किया जाने लगा। किंतु प्रति वर्ष ठेके की यह व्यवस्था और असफल रही। क्योंकि इससे भू-राजस्व की दर तथा वसूल की राशि की मात्रा प्रति वर्ष परिवर्तित होने लगी। इससे कम्पनी को यह अनिश्चितता होती थी कि अगले वर्ष कितना लगान वसूल होगा। इस व्यवस्था का एक दोष यह भी था कि प्रति वर्ष नये-नये व्यक्ति ठेका लेकर किसानों से अधिक से अधिक भू-राजस्व वसूल करते थे। चूंकि इसमें इजारेदारों (ठेकेदारों या जमींदारों) का भूमि पर अस्थायी स्वामित्व होता था, इसलिये वे भूमि सुधारों में कोई रुचि नहीं लेते थे। उनका मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक लगान वसूल करना होता था। इसके लिये वे किसानों का उत्पीड़न भी करते थे। ये इजारेदार वसूली की पूरी रकम भी कम्पनी को नहीं देते थे। इस व्यवस्था के कारण किसानों पर अत्यधिक बोझ पड़ा। तथा वे कंगाल होने लगे।

यद्यपि यह व्यवस्था काफी दोषपूर्ण थी फिर भी इससे कम्पनी की आय में वृद्धि हुयी।

परिणाम

वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा बंगाल में स्थापित कर संग्रहण की ठेकेदारी व्यवस्था से किसानों की स्थिति सोचनीय हो गयी थी। इस स्थिति में सुधार के लिए कंपनी सरकार ने लार्ड कार्नवालिस को स्थायी सुधार के लिए नियुक्त किया।स्थायी बंदोबस्त अथवा इस्तमरारी बंदोबस्त ईस्ट इण्डिया कंपनी और बंगाल के जमींदारों के बीच कर वसूलने से सम्बंधित एक स्थाई व्यवस्था हेतु सहमति समझौता था जिसे बंगाल में लार्ड कार्नवालिस[1] द्वारा 22 मार्च, 1793 को लागू किया गया। इसके द्वारा तत्कालीन बंगाल और बिहार में भूमि कर वसूलने की जमींदारी प्रथा को आधीकारिक तरीका चुना गया। बाद में यह कुछ विनियामकों द्वारा पूरे उत्तर भारत में लागू किया गया।[1]

उसने सबसे पहले बंगाल में प्रचलित भू राजस्व व्यवस्था का पूरा अध्ययन किया। उसके समक्ष तीन प्रमुख प्रश्न थे-

१)जमींदार या कृषक में से किसके साथ व्यवस्था की जाए।

२)कंपनी की भूमि की उपज में क्या भाग होना चाहिए?

३) भूमि व्यवस्था अस्थाई होनी चाहिए यह 10 वर्षों के लिए होनी चाहिए।

उपरोक्त प्रश्नों के हल के लिए राजस्व बोर्ड के प्रधान सर जॉन शार और अभिलेख पाल(Record keeper) जेम्स ग्रांट के साथ लॉर्ड कार्नवालिस का लंबा वाद विवाद हुआ। लॉर्ड कार्नवालिस ने जमींदारों को भूमि का स्वामी मान लिया और 1790 ईस्वी में उनसे 10 वर्षीय व्यवस्था की। 1793 ई. में उसने इस व्यवस्था को स्थाई बना दिया। इस व्यवस्था के अंतर्गत जमींदारों को एक निश्चित राशि पर भूमि दे दी गई। जमींदार की मृत्यु के पश्चात उसके उत्तराधिकारी को भूमि का स्वामित्व प्राप्त हो जाता था। जमींदारों को यह निश्चित राशि एक निश्चित समय को सूर्यास्त के पहले चुका देनी पड़ती थी नहीं तो उनकी जमीन नीलाम कर दी जाती थी इस कानून को सूर्यास्त कानून कहा जाता था।

इस बंदोबस्त के अन्य दूरगामी परिणाम भी हुए और इन्ही के द्वारा भारत में पहली बार आधिकारिक सेवाओं को तीन स्पष्ट भागों में विभक्त किया गया और राजस्व, न्याय और वाणिज्यिक सेवाओं को अलग-अलग किया गया।

जमींदारी व्यवस्था अंग्रेजो की देन थी इसमें कई आर्थिक उद्देश्य निहित थे इस पद्दति को जांगीरदारी, मालगुजारी, बिसवेदारी, इत्यादि भिन्न भिन्न नामों से भी जाना जाता था[6]

१) इस व्यवस्था से कंपनी को प्रथम लाभ यह हुआ कि कंपनी की आय निश्चित हो गई। उसे एक निश्चित तिथि को एक निश्चित राशि प्राप्त हो जाती थी। अतः कंपनी का बजट तैयार करने में सुविधा होती थी

२) अब कंपनी को प्रत्येक किसान से भूमि राजस्व वसूल करने के उत्तरदायित्व से मुक्ति मिल गई। अब कंपनी को अपने साम्राज्य का विस्तार तथा व्यापार के विस्तार का समय मिल गया।

३) अब जमींदार कंपनी के स्वामी भक्त बन गए और ब्रिटिश विरोधी जो आंदोलन हुए उसमें उन्होंने कंपनी के सहायता की। इन जमींदारों ने तन मन से अंग्रेजों की सेवा की।

४) स्थाई बंदोबस्त बंगाल के जमींदारों के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ। अब कंपनी ने उन्हें भूमि का स्वामी स्वीकार कर लिया। जमींदारों को पूरा भरोसा गया कि जब तक वह निश्चित राशि कंपनी को चुकाते रहेंगे तब तक वह भूमि के स्वामी बने रहेंगे। अब उन्हें और किसी प्रकार का कर नहीं चुकाना पड़ता था।[4]

५) स्थायी बंदोबस्त से यह भी लाभ हुआ कि कृषि में उत्पादन बहुत अधिक बढ़ गया। इसके फलस्वरूप बंगाल शीघ्र ही भारत का सबसे समृद्ध प्रांत बन गया। इसे व्यापार और उद्योग को भी बढ़ावा मिला।[2]

निष्कर्ष

महालवाड़ी व्यवस्था, ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा सन 1833 में उत्तर प्रदेश, पंजाब, मध्य प्रदेश में लागू की गयी भू-राजस्व की प्रणाली थी। यह भू राजस्व भारत के 30% भूभाग पर लागू किया गया। इसके पहले कम्पनी बंगाल में स्थायी बन्दोबस्त (सन १७९३ ई में) तथा बम्बई, मद्रास आदि में रैयतवाड़ी (सन १८२० में) लागू कर चुकी थी।

इस व्यवस्था में भूमि राजस्व बंदोबस्त कंपनी ने एक एक गांव को 'महल' मान कर गांव के मुखिया के साथ किया। गांव के मुखिया को 'लंबरदार' कहा जाता था जिसका कार्य गांव से लगान वसूल कर कंपनी को देना था। गांव को महाल कहे जाने के कारण इस व्यवस्था का नाम महालवाड़ी व्यवस्था पड़ा इस व्यवस्था की अवधारणा सर्वप्रथम होल्ड मैकेन्जी ने 1819 ईसवी में दिया। 1822 के रेग्यूलेशन के अनुसार कुल भूभाग का 95% निश्चित किया गया था तथा इसे वसूलने के अत्यधिक कठोरता बनाई गई थी। अतः यह व्यवस्था असफल रही। 1833 ईस्वी में मार्टिन बर्ड के देखरेख में उत्तर भारत में कई सुधारों के साथ महालवाड़ी व्यवस्था पुनः लागू हुई।[3] मार्टिन बर्ड को उत्तर भारत में भूमि का व्यवस्था का प्रवर्तक माना जाता था। भूमि कर कुल उपज का 66% तय किया गया। यह व्यवस्था 30 वर्षों के लिए कि गई । इसके बाद में लॉर्ड डलहौजी द्वारा कम कर के 50% कर दिया गया। परंतु कर वास्तविक उपज के स्थान पर अनुमानित किया गया था। इससे किसानों को कोई राहत नहीं मिली। साथ ही लम्बदर अधिकांशत भूमि पर अधिकार में रख लेते थे। वह राजस्व वसूलने के लिए छोटे किसानों पर अत्याचार करता था।[1]

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 10, Issue 8, August 2023 |

प्रतिक्रिया दें संदर्भ

1) रैयतवाड़ी व्यवस्था
2) भारत में अंग्रेज़ो की भू-राजस्व नीतियां
3) "Cornwallis Code". Encyclopedia Britannica. 4 February 2009. मूल से 8 जनवरी 2019 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 24 February 2017.
4) ↑ "संग्रहीत प्रति". मूल से 24 जनवरी 2019 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 1 जुलाई 2020.
5) ↑ "संग्रहीत प्रति". मूल से 24 सितंबर 2017 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 1 जुलाई 2020.
6) "THE MAHALWARI SYSTEM" (PDF). मूल से 29 मार्च 2018 को पुरालेखित (PDF). अभिगमन तिथि 2 जुलाई 2020.

INNO SPACE

SJIF Scientific Journal Impact Factor

Impact Factor:
7.580

doi crossref

निस्केयर NISCAIR

INTERNATIONAL JOURNAL
OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH
IN SCIENCE, ENGINEERING, TECHNOLOGY AND MANAGEMENT

+91 99405 72462 +91 63819 07438 ijmrsetm@gmail.com

www.ijmrsetm.com